



ज्ञानविधि

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्म-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)

IIFS Impact Factor-4.5

Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026

Page No.- 406-419

©2026 Gyanvidha

<https://journal.gyanvidha.com>

Author's :

Dr. Ajeet Kumar

PhD From- Department of History, Veer
Kunwar Singh University, Ara (Bihar).

Corresponding Author :

Dr. Ajeet Kumar

PhD From- Department of History, Veer
Kunwar Singh University, Ara (Bihar).

राष्ट्र संघ की असफलता और द्वितीय विश्व युद्ध की अपरिहार्यता : एक आलोचनात्मक विश्लेषण

सारांश : प्रस्तुत शोध पत्र प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात स्थापित प्रथम अंतरराष्ट्रीय संगठन, 'राष्ट्र संघ', की कार्यप्रणाली और उसकी विफलता के दूरगामी परिणामों का गहन विश्लेषण करता है। शोध का मुख्य केंद्र इस प्रश्न पर टिका है कि क्या राष्ट्र संघ की संरचनात्मक और रणनीतिक कमजोरियों ने ही द्वितीय विश्व युद्ध को एक 'अपरिहार्य घटना' बना दिया था। विश्लेषण के दौरान यह पाया गया कि अमेरिका की अनुपस्थिति, सर्वसम्मति के निर्णय की बाध्यता और अपनी स्वयं की सैन्य शक्ति का अभाव संघ की सबसे बड़ी संरचनात्मक खामियां थीं। मंचूरिया और अबीसीनिया संकटों के दौरान संघ की निष्क्रियता ने यह सिद्ध कर दिया कि सामूहिक सुरक्षा का सिद्धांत व्यवहार में विफल रहा है।

शोध पत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि ब्रिटेन और फ्रांस की 'तुष्टीकरण की नीति' और राष्ट्र संघ की अक्षमता ने एडोल्फ हिटलर और मुसोलिनी जैसी विस्तारवादी शक्तियों का मनोबल बढ़ाया। अंततः, यह निष्कर्ष निकलता है कि राष्ट्र संघ अंतरराष्ट्रीय शांति बनाए रखने के अपने प्राथमिक उद्देश्य में न केवल विफल रहा, बल्कि इसकी दुर्बलताओं ने ही महाशक्तियों के बीच अविश्वास की खाई को इतना गहरा कर दिया कि 1939 तक आते-आते द्वितीय विश्व युद्ध को टालना असंभव हो गया। यह शोध पत्र अंतरराष्ट्रीय राजनीति के उन ऐतिहासिक पाठों को रेखांकित करता है, जिनके आधार पर आगे चलकर संयुक्त राष्ट्र (UN) की नींव रखी गई।

मुख्य शब्द : राष्ट्र संघ, द्वितीय विश्व युद्ध, सामूहिक सुरक्षा, तुष्टीकरण, अंतरराष्ट्रीय कूटनीति, संरचनात्मक विफलता।

प्रस्तावना : मानव इतिहास में प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) एक ऐसी त्रासदी थी जिसने न केवल सीमाओं को बदला, बल्कि वैश्विक चेतना को भी झकझोर कर रख दिया। इस 'महायुद्ध' के समापन के बाद, विश्व के नेताओं ने महसूस किया कि भविष्य में ऐसे विनाश को रोकने के लिए

एक स्थायी अंतरराष्ट्रीय मंच की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य के साथ 10 जनवरी, 1920 को 'राष्ट्र संघ' की स्थापना की गई। जैसा कि **नॉर्देज (2004)** रेखांकित करते हैं, राष्ट्र संघ का मुख्य उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना और सामूहिक सुरक्षा के माध्यम से युद्धों को रोकना था।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और आदर्शवाद : राष्ट्र संघ की अवधारणा मुख्य रूप से अमेरिकी राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन के 'चौदह बिंदुओं' पर आधारित थी। विल्सन का मानना था कि गुप्त संधियों के स्थान पर 'खुली कूटनीति' होनी चाहिए। **बेनेट और ओलिवर (2002)** के अनुसार, संघ की स्थापना एक ऐसे 'आदर्शवाद' (Idealism) का प्रतीक थी, जहाँ राष्ट्र अपने विवादों का समाधान युद्ध के मैदान के बजाय कानूनी और नैतिक मेज पर खोजेंगे। 'पेरिस शांति सम्मेलन' के दौरान 'राष्ट्र संघ की संविदा' को अंतिम रूप दिया गया, जिसे वर्साय की संधि का एक अभिन्न अंग बनाया गया।

सामूहिक सुरक्षा का सिद्धांत : राष्ट्र संघ का हृदय उसकी संविदा की धारा 10 में निहित था, जो 'सामूहिक सुरक्षा' (Collective Security) की बात करती थी। इस सिद्धांत के अनुसार, किसी भी एक सदस्य राष्ट्र पर हमला सभी सदस्यों पर हमला माना जाएगा। **हाउसलैब (2018)** तर्क देते हैं कि यह विचार अपने आप में क्रांतिकारी था, क्योंकि यह पारंपरिक 'शक्ति संतुलन' के सिद्धांत को चुनौती देता था। हालांकि, यह सिद्धांत तभी प्रभावी हो सकता था जब सभी बड़ी शक्तियां एकजुट होकर आक्रमणकारी के विरुद्ध खड़ी हों।

विफलता के बीज और अपरिहार्यता का प्रश्न : प्रस्तावना का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि राष्ट्र संघ की स्थापना के साथ ही उसकी विफलता के बीज भी बो दिए गए थे। वर्साय की संधि, जिसे अक्सर 'प्रतिशोध की संधि' कहा जाता है, ने जर्मनी को अपमानित किया और भविष्य के संघर्षों की आधारशिला रखी (**Henig, 1995**)। **स्कॉट (1973)** का मानना है कि राष्ट्र संघ का जन्म एक ऐसी संधि से हुआ जो न्याय पर नहीं बल्कि विजेताओं की इच्छा पर आधारित थी। जब 1930 के दशक में आर्थिक मंदी (Great Depression) ने विश्व को घेरा, तो सदस्य देशों ने अंतरराष्ट्रीय हितों के बजाय अपने राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देना शुरू कर दिया। जापान का मंचूरिया पर आक्रमण (1931) और इटली का अबीसीनिया (इथियोपिया) पर आक्रमण (1935) ऐसी घटनाएं थीं, जिन्होंने संघ की 'दंतहीन' प्रकृति को उजागर कर दिया। **ओवरी (2010)** के अनुसार, इन विफलताओं ने एडोल्फ हिटलर को यह विश्वास दिलाया कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय उसे रोकने की न तो इच्छा रखता है और न ही क्षमता।

शोध का उद्देश्य और समस्या : प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि क्या राष्ट्र संघ की असफलता केवल एक संस्थागत हार थी या यह उन परिस्थितियों का परिणाम थी जिन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध को अपरिहार्य बना दिया था। क्या द्वितीय विश्व युद्ध को टाला जा सकता था यदि राष्ट्र संघ अधिक सशक्त होता? यह शोध इस आलोचनात्मक प्रश्न की पड़ताल करता है कि कैसे एक 'शांति का यंत्र' अपनी ही संरचनात्मक सीमाओं और सदस्य राष्ट्रों की तुष्टीकरण की नीति के कारण युद्ध का मूक गवाह बन गया।

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध पत्र की प्रकृति ऐतिहासिक, विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र संघ की विफलता के पीछे के कारणों की गहराई से जांच करना और द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत के साथ उनके अंतर्संबंधों को स्थापित करना है। शोध में अपनाई गई पद्धति के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. शोध का दृष्टिकोण (Research Approach) : इस अध्ययन में गुणात्मक शोध दृष्टिकोण को अपनाया गया है। **क्रसवेल (2014)** के अनुसार, गुणात्मक शोध ऐतिहासिक घटनाओं के पीछे निहित जटिल अर्थों और मानवीय व्यवहारों को समझने में सहायक होता है। यहाँ सांख्यिकीय डेटा के बजाय ऐतिहासिक तथ्यों, संधियों के प्रावधानों और कूटनीतिक पत्राचारों के तार्किक विश्लेषण पर जोर दिया गया है।

2. डेटा संग्रहण के स्रोत (Sources of Data Collection) : अध्ययन की प्रामाणिकता सुनिश्चित करने के लिए दो प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है:

- **प्राथमिक स्रोत (Primary Sources):** इसमें 'राष्ट्र संघ की संविदा', वर्साय की संधि के आधिकारिक दस्तावेज, राष्ट्र संघ की परिषद् (Council) और असेंबली की बैठकों के कार्यवृत्त (Minutes), तथा तत्कालीन राजनेताओं (जैसे वुड्रो विल्सन, विंस्टन चर्चिल) के भाषणों और पत्रों को आधार बनाया गया है।
- **माध्यमिक स्रोत (Secondary Sources):** इसमें प्रतिष्ठित इतिहासकारों द्वारा लिखी गई पुस्तकें, अंतरराष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांतों पर आधारित शोध लेख (Peer-reviewed Journals), और ऐतिहासिक समीक्षाएं शामिल हैं। कैर (1939) और टेलर (1961) जैसे विद्वानों के कार्यों का विशेष रूप से संदर्भ लिया गया है।

3. विश्लेषणात्मक ढांचा (Analytical Framework) : शोध में 'यथार्थवादी' और 'आदर्शवादी' सिद्धांतों के चश्मे से घटनाओं का विश्लेषण किया गया है। **मॉर्गनथाऊ (1948)** के 'शक्ति की राजनीति' के सिद्धांत का उपयोग यह समझने के लिए किया गया है कि कैसे महाशक्तियों के व्यक्तिगत हितों ने सामूहिक सुरक्षा के आदर्शों को धराशायी कर दिया।

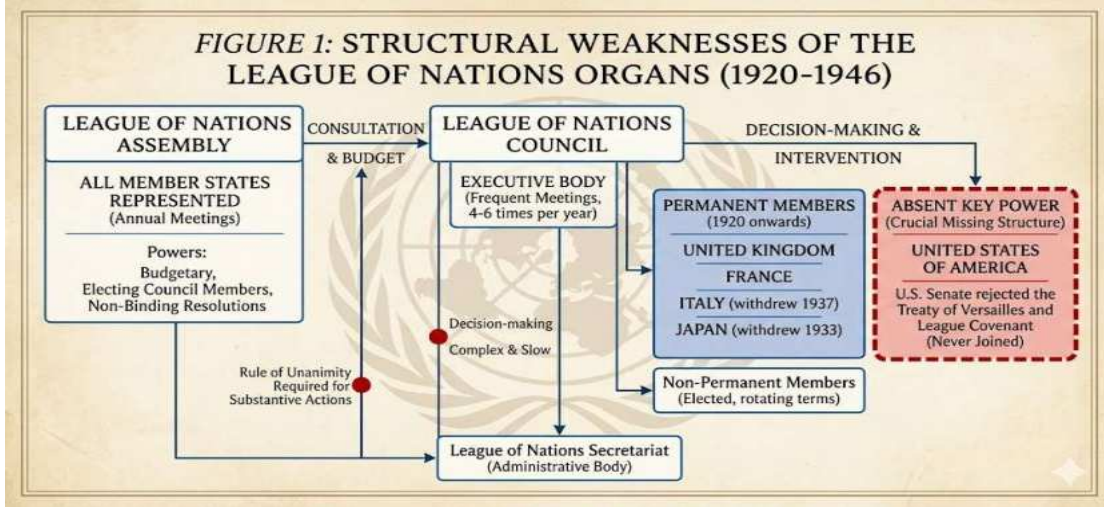
4. ऐतिहासिक तुलनात्मक पद्धति (Historical Comparative Method) : अध्ययन में राष्ट्र संघ द्वारा निपटाए गए विभिन्न संकटों (जैसे मंचूरिया 1931 बनाम अबीसीनिया 1935) की तुलना की गई है ताकि यह पहचाना जा सके कि विफलता का पैटर्न क्या था। स्कोकपोल (1984) के अनुसार, तुलनात्मक ऐतिहासिक विश्लेषण घटनाओं के कारणों और परिणामों के बीच एक मजबूत कड़ी स्थापित करने में मदद करता है।

5. शोध का परिसीमन (Delimitation of Research) : यह शोध मुख्य रूप से 1919 (संघ की स्थापना) से 1939 (युद्ध की शुरुआत) तक की समयावधि तक सीमित है। विश्लेषण का मुख्य केंद्र बिंदु यूरोप और पूर्व एशिया की घटनाएं हैं जिन्होंने सीधे तौर पर अंतरराष्ट्रीय शांति को प्रभावित किया।

राष्ट्र संघ की संरचनात्मक कमियां : राष्ट्र संघ का उदय शांति के एक महान आदर्श के रूप में हुआ था, किंतु इसकी आधारशिला में ही कुछ ऐसी मौलिक और संरचनात्मक त्रुटियां थीं जिन्होंने इसे एक 'दंतहीन शेर' बना दिया। जैसा कि **वाल्टर्स (1952)** ने उल्लेख किया है, संघ की विफलता केवल कूटनीतिक नहीं थी, बल्कि इसकी नियमावली (Covenant) और सांगठनिक ढांचे में अंतर्निहित विरोधाभासों का परिणाम थी।

शक्तियों का असंतुलन और प्रमुख राष्ट्रों की अनुपस्थिति : राष्ट्र संघ की सबसे बड़ी संरचनात्मक दुर्बलता इसकी सार्वभौमिकता (Universality) का अभाव था। एक अंतरराष्ट्रीय संगठन तभी प्रभावी हो सकता है जब विश्व की सभी प्रमुख शक्तियां उसका हिस्सा हों।

- **संयुक्त राज्य अमेरिका का अलगाववाद:** विडंबना यह थी कि जिस संगठन की कल्पना अमेरिकी राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन ने की थी, अमेरिका स्वयं उसका सदस्य नहीं बना। अमेरिकी सीनेट ने वर्साय की संधि और संघ की संविदा को अनुमोदित करने से इनकार कर दिया। **नॉर्दहेज (2004)** के अनुसार, अमेरिका की अनुपस्थिति ने संघ को आर्थिक और नैतिक रूप से पंगु बना दिया, क्योंकि बिना अमेरिकी सहयोग के अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंध (Sanctions) कभी प्रभावी नहीं हो सकते थे।
- **पराजित और बहिष्कृत राष्ट्र:** प्रारंभ में, जर्मनी और सोवियत संघ जैसे महत्वपूर्ण राष्ट्रों को संघ से बाहर रखा गया। जर्मनी को 1926 में प्रवेश मिला और सोवियत संघ को 1934 में, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। **बुरोज (1949)** तर्क देते हैं कि संघ को 'विजेताओं के क्लब' (Victors' Club) के रूप में देखा जाने लगा, जिससे इसकी निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न लग गया।
- **सदस्यता का निरंतर बदलना:** जापान, जर्मनी और इटली जैसे देशों ने जब चाहा संघ का त्याग कर दिया (जैसे 1933 में जर्मनी और जापान का बाहर निकलना)। संघ के पास ऐसी कोई वैधानिक शक्ति नहीं थी जो इन राष्ट्रों को आक्रामक होने से रोक सके या उन्हें सदस्य बने रहने के लिए बाध्य कर सके।



चित्र 1 की व्याख्या: राष्ट्र संघ के अंगों की संरचनात्मक कमजोरियाँ : यह चार्ट राष्ट्र संघ (League of Nations) के सांगठनिक ढांचे और उन अंतर्निहित दोषों को प्रदर्शित करता है, जिन्होंने अंततः इसे द्वितीय विश्व युद्ध को रोकने में विफल बनाया। चार्ट के मुख्य बिंदुओं का विश्लेषण निम्नलिखित है:

1. असेंबली और काउंसिल (League of Nations Assembly & Council): चार्ट के शीर्ष पर दो मुख्य निकाय दिखाए गए हैं। 'असेंबली' में सभी सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व था, लेकिन इसके पास केवल 'गैर-बाध्यकारी' (Non-binding) प्रस्ताव पारित करने की शक्ति थी। 'काउंसिल' मुख्य कार्यकारी निकाय था, जिसका कार्य निर्णय लेना और हस्तक्षेप करना था।
2. सर्वसम्मति का नियम (Rule of Unanimity): चार्ट में नीचे की ओर जा रहे तीरों (Arrows) के बीच एक लाल बिंदु द्वारा 'Rule of Unanimity' को दर्शाया गया है। यह इस बात का प्रतीक है कि किसी भी महत्वपूर्ण कार्रवाई के लिए सभी सदस्यों की सहमति अनिवार्य थी। इस नियम के कारण निर्णय लेने की प्रक्रिया अत्यंत धीमी और जटिल हो गई थी, क्योंकि एक भी देश पूरे प्रस्ताव को वीटो कर सकता था।
3. स्थायी सदस्य बनाम अनुपस्थित शक्ति (Permanent Members vs. Absent Power): चार्ट का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा दाईं ओर है, जिसे दो अलग रंगों में विभाजित किया गया है:
 - नीला बॉक्स (Permanent Members): इसमें ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जापान को दिखाया गया है। यहाँ कोष्ठक में उल्लेख किया गया है कि जापान (1933) और इटली (1937) ने बाद में संघ छोड़ दिया था, जिससे परिषद की शक्ति कम होती गई।
 - लाल डैश वाला बॉक्स (Absent Key Power): इसे विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए बनाया गया है। लाल रंग और डैश वाली रूपरेखा यह दर्शाती है कि अमेरिका की अनुपस्थिति संघ के ढांचे में एक 'गंभीर कमी' (Crucial Missing Structure) थी। अमेरिकी सीनेट द्वारा वर्साय की संधि को खारिज करने के कारण, दुनिया की सबसे बड़ी आर्थिक और सैन्य शक्ति इस शांति-तंत्र का हिस्सा कभी नहीं बन सकी।
4. प्रशासनिक ढांचा (Secretariat): सबसे नीचे 'सचिवालय' को दिखाया गया है, जो प्रशासनिक कार्यों के लिए था। चार्ट यह स्पष्ट करता है कि सचिवालय केवल परिषद और असेंबली के निर्णयों पर निर्भर था, उसके पास स्वयं की कोई स्वतंत्र कार्यकारी शक्ति नहीं थी।

यह फ्लोचार्ट स्पष्ट करता है कि राष्ट्र संघ एक 'दंतहीन' (Toothless) संगठन था। जहाँ एक तरफ शक्तिशाली अमेरिका बाहर था, वहीं दूसरी तरफ 'सर्वसम्मति के नियम' ने उपस्थित सदस्यों के हाथ भी बांध रखे थे। इसी

संरचनात्मक विरोधाभास ने आक्रामक राष्ट्रों को अंतरराष्ट्रीय कानूनों के उल्लंघन का साहस प्रदान किया।

संवैधानिक जटिलता और निर्णय लेने की प्रक्रिया : राष्ट्र संघ की कार्यप्रणाली के नियम इतने जटिल थे कि संकट के समय त्वरित निर्णय लेना लगभग असंभव था।

- **सर्वसम्मति का नियम:** संघ की संविदा की धारा 5 के अनुसार, असेंबली या काउंसिल के किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय के लिए सभी उपस्थित सदस्यों की 'सर्वसम्मति' अनिवार्य थी। **स्टोन (1954)** के विश्लेषण के अनुसार, इस नियम का अर्थ था कि एक छोटा सा राष्ट्र भी वीटो (Veto) का उपयोग कर किसी भी प्रभावी कार्रवाई को रोक सकता था। यह लोकतंत्र का अतिवादी रूप था जिसने संगठन को निष्क्रिय बना दिया।
- **परिषद और असेंबली के बीच शक्तियों का अस्पष्ट बंटवारा:** संविदा में यह स्पष्ट नहीं था कि परिषद (Council) और असेंबली के अधिकार क्षेत्रों के बीच स्पष्ट विभाजन रेखा क्या है। दोनों ही निकाय लगभग समान विषयों पर चर्चा कर सकते थे, जिससे अक्सर भ्रम और देरी की स्थिति पैदा होती थी।

चार्ट 1: राष्ट्र संघ की सांगठनिक संरचना और विसंगतियां

निकाय (Body)	मुख्य भूमिका	प्रमुख संरचनात्मक दोष
असेंबली (Assembly)	सभी सदस्य देशों का प्रतिनिधित्व	सर्वसम्मति की अनिवार्यता; केवल सिफारिशी शक्तियां।
परिषद (Council)	प्रमुख शक्तियों का कार्यकारी निकाय	स्थायी सदस्यों का प्रभुत्व और उनके राष्ट्रीय हितों का टकराव।
सचिवालय (Secretariat)	प्रशासनिक कार्य	बजटीय सीमाओं के कारण सीमित प्रभावशीलता।
अंतरराष्ट्रीय न्यायालय	कानूनी विवादों का निपटारा	अनिवार्य क्षेत्राधिकार का अभाव (कोई देश बाध्य नहीं था)।

FIGURE 2: THE FAILURE CYCLE OF LEAGUE OF NATIONS "COLLECTIVE SECURITY" (1920-1939)

Illustrating the Gap between Theoretical Ideal and Practical Reality



चित्र 2 की व्याख्या: राष्ट्र संघ की 'सामूहिक सुरक्षा' की विफलता का चक्र : यह चार्ट राष्ट्र संघ (League of Nations) के मूल सिद्धांत, 'सामूहिक सुरक्षा' (Collective Security), की व्यावहारिक विफलता को एक चक्र के

रूप में प्रदर्शित करता है। यह सिद्धांत इस धारणा पर आधारित था कि सभी राष्ट्र मिलकर किसी भी आक्रमणकारी के विरुद्ध खड़े होंगे, लेकिन व्यवहार में यह एक निष्क्रिय और आत्मघाती चक्र बनकर रह गया।

चार्ट के विभिन्न चरणों का विश्लेषण निम्नलिखित है:

5. आक्रमण (STEP 1: AGGRESSION): चार्ट के शीर्ष पर सैनिकों और तोपों को दिखाया गया है, जो किसी आक्रमणकारी राष्ट्र (Aggressor Nation) द्वारा किसी अन्य सदस्य देश पर हमले को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, 1931 में जापान का मंचूरिया पर आक्रमण।
6. संघ की अपील (STEP 2: LEAGUE APPEAL): पराजित या आहत देश (Victim Nation) तुरंत न्याय के लिए राष्ट्र संघ के मुख्यालय से अपील करता है। यह संविदा की धारा 10 और 11 के तहत संघ के हस्तक्षेप की मांग है।
7. जाँच में देरी (STEP 3: INVESTIGATION DELAY): यहाँ एक घड़ी, एक आवर्धक लेंस (Magnifying glass) और कागजों के ढेरों को दिखाया गया है। यह संघ की परिषद में चलने वाली लंबी बहसों और 'कमीशन ऑफ़ इन्क्वायरी' (जैसे मंचूरिया में लिटन कमीशन) को दर्शाता है। इस प्रक्रिया में अत्यधिक समय बर्बाद हो जाता था।
8. कमजोर प्रतिबंध (STEP 4: WEAK SANCTIONS): एक कमजोर और टूटी हुई दीवार को दिखाया गया है, जिस पर एक लाल 'X' का निशान है। यह संघ की सबसे बड़ी विफलता थी। जब तक जाँच पूरी होती, आक्रमणकारी अपना कब्जा पुख्ता कर चुका होता। संघ केवल आर्थिक प्रतिबंध (Economic Sanctions) लगाता था, लेकिन वे भी 'तेल' (Oil) जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों पर नहीं होते थे (जैसा कि अबीसीनिया में इटली पर हुआ)।
9. आक्रमणकारी का संघ छोड़ना (STEP 5: AGGRESSOR LEAVES LEAGUE): यहाँ एक व्यक्ति को संघ के मुख्यालय के गेट से बाहर जाते हुए दिखाया गया है। जब संघ ने प्रतिबंध लगाए या निंदा की, तो आक्रमणकारी राष्ट्रों ने (जापान, जर्मनी, इटली) बस सदस्यता से इस्तीफा दे दिया और संघ के अधिकार क्षेत्र से बाहर चले गए।
10. पुनः आक्रमण (RETURN TO NEW AGGRESSION): यह चक्र का सबसे खतरनाक बिंदु है। चूँकि आक्रमणकारी को कोई कड़ा दंड नहीं मिला, इसलिए उसे यह विश्वास हो गया कि अंतरराष्ट्रीय समुदाय उसे रोकने की क्षमता नहीं रखता। इससे उसे 'पुनः आक्रमण' करने का प्रोत्साहन मिला, जो सीधे तौर पर द्वितीय विश्व युद्ध की ओर ले गया।

यह साइकिल डायग्राम स्पष्ट करता है कि राष्ट्र संघ की 'सामूहिक सुरक्षा' एक मृत सिद्धांत (Dead Principle) थी। जाँच की लंबी प्रक्रिया और कमजोर प्रतिबंधों ने आक्रमणकारियों का मनोबल बढ़ाया। यह चार्ट यह सिद्ध करने के लिए सबसे बड़ा साक्ष्य है कि कैसे एक 'शांति यंत्र' अपनी ही कमजोरी के कारण युद्ध का मूक गवाह बन गया **(Henig, 1995)**।

प्रवर्तन शक्तियों और सैन्य बल का अभाव : एक प्रभावी शांति रक्षक के पास नियमों को लागू करने की शक्ति होनी चाहिए, जो राष्ट्र संघ के पास पूरी तरह नदारद थी।

- **स्वयं की सेना का अभाव:** राष्ट्र संघ के पास अपनी कोई स्थायी अंतरराष्ट्रीय सेना नहीं थी। किसी भी सैन्य कार्रवाई के लिए उसे सदस्य देशों (विशेषकर ब्रिटेन और फ्रांस) के सैनिकों पर निर्भर रहना पड़ता था। **जिम्मर्न (1936)** के अनुसार, जब तक प्रमुख राष्ट्र अपने सैनिकों को जोखिम में डालने के लिए तैयार नहीं होते थे, संघ केवल 'कागजी विरोध' दर्ज करने तक सीमित रहता था।
- **प्रतिबंधों की विफलता (Ineffectiveness of Sanctions):** संविदा की धारा 16 में आर्थिक और सैन्य प्रतिबंधों का प्रावधान था। लेकिन अमेरिका जैसे गैर-सदस्य देशों के साथ व्यापार जारी रहने के कारण आर्थिक

प्रतिबंध कभी भी आक्रमणकारी राष्ट्र की कमर नहीं तोड़ पाए। इसका सबसे बड़ा उदाहरण 1935 में इटली पर लगाए गए आधे-अधूरे आर्थिक प्रतिबंध थे (Henig, 1995)।

वर्साय की संधि के साथ दोषपूर्ण जुड़ाव (Fatal Linkage with Versailles) : राष्ट्र संघ की सबसे बड़ी वैचारिक कमी यह थी कि इसे 'वर्साय की संधि' का एक हिस्सा बनाया गया था। जैसा कि हेनिग (1995) तर्क देते हैं, चूँकि वर्साय की संधि को जर्मनी और उसके सहयोगियों पर थोपा गया था, इसलिए राष्ट्र संघ को भी एक 'शांति रक्षक' के बजाय 'विजेताओं' की संधि को लागू करने वाले यंत्र के रूप में देखा जाने लगा।

- **प्रतिशोध की भावना: कैर (1939)** के अनुसार, संघ का मुख्य कार्य उन सीमाओं की रक्षा करना बन गया जो युद्ध के बाद मनमाने ढंग से तय की गई थीं। इसने पराजित राष्ट्रों के मन में यह धारणा पुख्ता कर दी कि संघ केवल ब्रिटेन और फ्रांस के साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए है।
- **अन्यायपूर्ण आधार: स्कॉट (1973)** के विश्लेषण में यह स्पष्ट है कि जब तक संघ वर्साय की संधि के 'दोषपूर्ण' प्रावधानों (जैसे युद्ध अपराध की धारा 231) से जुड़ा रहा, तब तक यह जर्मनी जैसे देशों का विश्वास जीतने में असमर्थ रहा।

संविदा (Covenant) की धाराओं की व्याख्यात्मक अस्पष्टता : राष्ट्र संघ की नियमावली की कुछ धाराएं अपने आप में विरोधाभासी थीं, जिन्होंने संकट के समय कानूनी पेचीदगियां पैदा कीं।

- **धारा 10 बनाम राष्ट्रीय संप्रभुता:** धारा 10 सदस्यों को एक-दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करने के लिए बाध्य करती थी। हालांकि, इसमें यह स्पष्ट नहीं था कि यह 'रक्षा' कैसे की जाएगी। **नॉर्दहेज (2004)** के अनुसार, कई राष्ट्रों को डर था कि यह धारा उन्हें अनचाहे युद्धों में घसीट लेगी, जिसके कारण उन्होंने इस पर पूर्ण अमल कभी नहीं किया।
- **धारा 11 और 15 की सीमाएं:** इन धाराओं के तहत संघ को युद्ध रोकने के लिए मध्यस्थता करने का अधिकार था, लेकिन यदि विवाद 'घरेलू क्षेत्राधिकार' (Domestic Jurisdiction) का बताया जाता, तो संघ हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। तानाशाहों ने अक्सर इसी कानूनी 'लूपहोल' का फायदा उठाया (Walters, 1952)।
- **निरस्त्रीकरण (Disarmament) का विरोधाभास:** धारा 8 ने सदस्यों से हथियारों को कम करने का आह्वान किया, लेकिन यह 'राष्ट्रीय सुरक्षा' की शर्त के साथ था। **ओवरी (2010)** के अनुसार, हर देश ने अपनी सुरक्षा को प्राथमिकता दी, जिससे निरस्त्रीकरण सम्मेलन (1932-34) पूरी तरह विफल रहा।

चार्ट 2: राष्ट्र संघ की संविदा की प्रमुख धाराओं का आलोचनात्मक विश्लेषण

धारा (Article)	घोषित उद्देश्य	संरचनात्मक विफलता
धारा 8	निरस्त्रीकरण	राष्ट्रीय सुरक्षा की आड़ में हथियारों की होड़ जारी रही।
धारा 10	क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा	सैन्य प्रतिबद्धता की कमी के कारण केवल कागजी वादा।
धारा 11	युद्ध रोकना	परिषद के पास कार्रवाई के लिए 'अनिवार्य' शक्ति का अभाव।
धारा 16	आर्थिक/सैन्य प्रतिबंध	गैर-सदस्य देशों (जैसे USA) के कारण आर्थिक प्रतिबंध निष्प्रभावी रहे।
धारा 22	मैंडेट प्रणाली	अप्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवाद को बढ़ावा देने का आरोप।

राष्ट्रीय संप्रभुता बनाम अंतरराष्ट्रीय उत्तरदायित्व : राष्ट्र संघ की विफलता का एक प्रमुख कारण यह था कि सदस्य देश अपनी 'संप्रभुता' (Sovereignty) का त्याग करने को तैयार नहीं थे।

- **स्वार्थ की राजनीति:** मॉर्गनथाऊ (1948) के यथार्थवादी सिद्धांत के अनुसार, राष्ट्रों ने संघ का उपयोग केवल तभी किया जब वह उनके राष्ट्रीय हितों के अनुकूल था। जब ब्रिटेन और फ्रांस के हितों को खतरा नहीं था, तो उन्होंने मंचूरिया जैसे दूरदराज के संकटों में सक्रिय भूमिका निभाने से परहेज किया।
- **कार्यकारी शक्ति का अभाव:** संघ एक 'अधिसंघ' (Super-state) नहीं था। इसके पास सदस्य देशों को निर्देश देने की कोई संप्रभु शक्ति नहीं थी। टेलर (1961) का मानना है कि राष्ट्र संघ केवल उतना ही शक्तिशाली था जितना कि उसके शक्तिशाली सदस्य उसे बनाना चाहते थे।

अंततः, राष्ट्र संघ की संरचना ऐसी थी कि वह शांति की 'इच्छा' तो रखता था, लेकिन शांति 'स्थापित' करने की शक्ति नहीं। इसकी संरचनात्मक कमियों ने एक ऐसी स्थिति पैदा की जहाँ आक्रामक राष्ट्रों को यह लगने लगा कि अंतरराष्ट्रीय नियमों का उल्लंघन करने पर भी उन्हें कोई वास्तविक सजा नहीं मिलेगी। यही वह मोड़ था जहाँ से द्वितीय विश्व युद्ध की अपरिहार्यता (Inevitability) शुरू हुई (Henig, 1995)।

असफलता के प्रमुख मील के पत्थर (Major Milestones of Failure) : राष्ट्र संघ की विफलता का इतिहास उन घटनाओं की एक श्रृंखला है जहाँ संगठन ने अपनी 'सामूहिक सुरक्षा' की अवधारणा को व्यावहारिक रूप से त्याग दिया। जैसा कि वाल्टर्स (1952) ने उल्लेख किया है, संघ की मृत्यु एक झटके में नहीं हुई, बल्कि उन छोटे-बड़े संकटों के दौरान हुई जहाँ बड़ी शक्तियों ने अपने हितों को अंतरराष्ट्रीय शांति से ऊपर रखा।

मंचूरिया संकट (The Manchurian Crisis, 1931-1933) : मंचूरिया संकट को राष्ट्र संघ के ताबूत में 'पहली कील' माना जाता है। यह पहली बार था जब एक स्थायी सदस्य (जापान) ने दूसरे सदस्य (चीन) पर आक्रमण किया था।

घटनाक्रम और संघ की प्रतिक्रिया : सितंबर 1931 में, जापान ने 'मुक्डेन घटना' (Mukden Incident) का बहाना बनाकर चीनी प्रांत मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। चीन ने तुरंत राष्ट्र संघ से सहायता की अपील की। नॉर्दहेज (2004) के अनुसार, संघ की संविदा के तहत जापान के विरुद्ध तत्काल कार्रवाई की जानी चाहिए थी, लेकिन संघ ने अत्यधिक देरी की।

- **लिटन कमीशन (Lytton Commission):** संघ ने स्थिति की जांच के लिए लॉर्ड लिटन की अध्यक्षता में एक आयोग भेजा। आयोग को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने में एक वर्ष का समय लगा। टेलर (1961) तर्क देते हैं कि इस देरी ने जापान को मंचूरिया में अपनी जड़ें जमाने का पर्याप्त समय दे दिया।
- **दंतहीन रिपोर्ट:** लिटन रिपोर्ट ने जापान को दोषी तो ठहराया, लेकिन किसी भी कड़े सैन्य या आर्थिक प्रतिबंध की सिफारिश नहीं की। जब संघ ने रिपोर्ट स्वीकार की, तो जापान ने 1933 में राष्ट्र संघ की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

आलोचनात्मक विश्लेषण: विफलता के कारण :

1. **आर्थिक मंदी का प्रभाव:** ओवरी (2010) के अनुसार, 1929 की महामंदी के कारण ब्रिटेन और फ्रांस अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने में व्यस्त थे और वे जापान के साथ व्यापारिक युद्ध या सैन्य संघर्ष का जोखिम नहीं लेना चाहते थे।
2. **भौगोलिक दूरी:** यूरोपीय शक्तियों के लिए सुदूर पूर्व (Far East) का मुद्दा उनके अपने हितों से दूर था। बुरोज (1949) के अनुसार, संघ ने यह संदेश दिया कि वह केवल 'यूरोपीय शांति' का रक्षक है।

चार्ट 3: मंचूरिया संकट का विश्लेषण (The Failure Matrix)

विफलता का चरण	संघ की कार्रवाई	वास्तविक परिणाम	अकादमिक टिप्पणी
प्रारंभिक आक्रमण	केवल मौखिक निंदा	जापान का आक्रमण जारी रहा	"नैतिक दबाव का अभाव" (Northedge, 2004)
जांच प्रक्रिया	लिटन कमीशन (1 साल की देरी)	जापान ने 'मानचुकुओ' नामक कठपुतली राज्य बनाया	"न्याय में देरी, न्याय की हत्या"
निर्णय कार्यान्वयन	रिपोर्ट की स्वीकृति	जापान का संघ से बाहर निकलना	"शक्तिहीनता का प्रदर्शन" (Taylor, 1961)

निरस्त्रीकरण सम्मेलन की विफलता (Disarmament Conference, 1932-34) : संघ की संविदा की धारा 8 ने राष्ट्रों से अपने हथियारों को न्यूनतम स्तर पर लाने की अपेक्षा की थी। जिम्मर्न (1936) के अनुसार, जिनेवा में आयोजित 'विश्व निरस्त्रीकरण सम्मेलन' संघ की शांति स्थापना की अंतिम बड़ी कोशिश थी।

- **जर्मनी की समानता की मांग:** जर्मनी ने मांग की कि या तो अन्य देश अपने हथियारों का स्तर जर्मनी के बराबर (जो वर्साय की संधि द्वारा सीमित था) कम करें, या जर्मनी को पुनर्शस्त्रीकरण (Rearmament) की अनुमति दी जाए।
- **फ्रांस का डर:** फ्रांस ने बिना 'सुरक्षा गारंटी' के निरस्त्रीकरण से इनकार कर दिया। हेनिंग (1995) के अनुसार, राष्ट्रों के बीच व्याप्त गहरे अविश्वास ने इस सम्मेलन को विफल कर दिया।
- **परिणाम:** 1933 में हिटलर ने सम्मेलन और राष्ट्र संघ दोनों छोड़ दिए, जिससे यूरोप में हथियारों की एक नई होड़ शुरू हो गई।

अबीसीनिया संकट (The Abyssinian Crisis, 1935-1936) : मंचूरिया संकट के बाद, अबीसीनिया (वर्तमान इथियोपिया) पर इटली का आक्रमण राष्ट्र संघ के लिए 'अंतिम परीक्षा' (The Ultimate Test) की तरह था। जैसा कि **वाल्टर्स (1952)** ने लिखा है, यह संकट संघ के लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ क्योंकि इसमें यूरोप की दो प्रमुख शक्तियां (ब्रिटेन और फ्रांस) सीधे तौर पर शामिल थीं।

- **मुसोलिनी की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा:** अक्टूबर 1935 में, बेनिटो मुसोलिनी ने एक आधुनिक सेना के साथ अबीसीनिया पर हमला किया। अबीसीनिया के सम्राट हैले सेलासी ने राष्ट्र संघ की परिषद में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर न्याय की गुहार लगाई।
- **सीमित और अप्रभावी प्रतिबंध:** संघ ने इटली को 'आक्रमणकारी' घोषित किया और आर्थिक प्रतिबंध लगाए। हालांकि, **हेनिंग (1995)** के अनुसार, इन प्रतिबंधों में 'तेल' (Oil) को शामिल नहीं किया गया था, जो आधुनिक युद्ध के लिए सबसे आवश्यक था। इसके अलावा, स्वेज नहर को इतालवी जहाजों के लिए खुला रखा गया, जिससे इटली की सैन्य आपूर्ति जारी रही।
- **होरे-लेवल समझौता (Hoare-Laval Pact):** ब्रिटेन और फ्रांस ने गुप्त रूप से इटली को अबीसीनिया का दो-तिहाई हिस्सा देने का प्रस्ताव दिया ताकि इटली को जर्मनी के करीब जाने से रोका जा सके। **टेलर (1961)** तर्क देते हैं कि इस गुप्त कूटनीति ने राष्ट्र संघ की नैतिकता को पूरी तरह नष्ट कर दिया।

चार्ट 4: अबीसीनिया संकट की विफलता का प्रभाव

घटना का चरण	संघ की प्रतिक्रिया	विफलता का कारण	परिणाम
सैन्य आक्रमण	आर्थिक प्रतिबंध (आंशिक)	तेल और कोयले पर प्रतिबंध न लगाना	इटली की सेना का आगे बढ़ना जारी रहा।
कूटनीतिक प्रयास	होरे-लेवल गुप्त समझौता	ब्रिटेन-फ्रांस के दोहरे मापदंड	संघ की विश्वसनीयता शून्य हो गई।
अंतिम परिणाम	प्रतिबंधों को हटाना (1936)	मुसोलिनी का हिटलर से हाथ मिलाना	'रोम-बर्लिन धुरी' (Axis) का निर्माण।

राइनलैंड का पुनर्शस्त्रीकरण (Remilitarization of the Rhineland, 1936) : जब राष्ट्र संघ अबीसीनिया संकट में उलझा हुआ था, हिटलर ने इसका लाभ उठाते हुए 7 मार्च, 1936 को वर्साय की संधि का उल्लंघन किया और अपनी सेना 'राइनलैंड' (Rhineland) में भेज दी।

- **वर्साय की संधि की अवमानना:** राइनलैंड को संधि के तहत 'विसैन्यीकृत क्षेत्र' (Demilitarized Zone) घोषित किया गया था ताकि फ्रांस की सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। **ओवरी (2010)** के अनुसार, हिटलर का यह कदम एक बहुत बड़ा 'जुआ' (Gamble) था। यदि राष्ट्र संघ या फ्रांस ने सैन्य कार्रवाई की होती, तो जर्मन सेना को पीछे हटना पड़ता।
- **संघ की चुप्पी:** राष्ट्र संघ ने केवल 'निंदा प्रस्ताव' पारित किया। ब्रिटेन ने इसे "जर्मनी द्वारा अपने ही पिछवाड़े में जाने" जैसा सामान्य कृत्य माना। **नॉर्दहेज (2004)** लिखते हैं कि राइनलैंड की घटना ने यह स्पष्ट कर दिया कि 'सामूहिक सुरक्षा' अब एक मृत सिद्धांत (Dead Principle) बन चुका है।

स्पेनिश गृहयुद्ध (Spanish Civil War, 1936-1939) : स्पेन में जब गृहयुद्ध छिड़ा, तो जर्मनी और इटली ने राष्ट्रवादी ताकतों (फ्रेंको) की मदद की, जबकि सोवियत संघ ने रिपब्लिकन का समर्थन किया।

- **अहस्तक्षेप की नीति (Non-Intervention):** राष्ट्र संघ ने स्वयं को इस संघर्ष से दूर रखा। **कैर (1939)** का तर्क है कि संघ की इस निष्क्रियता ने फासीवादी शक्तियों को भविष्य के बड़े युद्ध के लिए अपनी सैन्य तकनीकों (जैसे हवाई बमबारी) का परीक्षण करने का अवसर प्रदान किया।

द्वितीय विश्व युद्ध की अपरिहार्यता: एक आलोचनात्मक विश्लेषण (The Inevitability of WWII: A Critical Analysis) : इतिहासकारों के बीच यह बहस का विषय रहा है कि क्या द्वितीय विश्व युद्ध को टाला जा सकता था? **टेलर (1961)** का तर्क है कि युद्ध किसी एक घटना का परिणाम नहीं, बल्कि 1919 से 1939 के बीच की कूटनीतिक विफलताओं का संचयी प्रभाव था। राष्ट्र संघ की अक्षमता ने एक ऐसा 'शक्ति शून्य' (Power Vacuum) पैदा किया, जिसे भरने के लिए विस्तारवादी शक्तियों ने आक्रामक रुख अपनाया।

तुष्टीकरण की नीति और संघ का पतन (Appeasement and the Decay of the League) : 1930 के दशक के उत्तरार्ध में, ब्रिटेन और फ्रांस ने राष्ट्र संघ के 'सामूहिक सुरक्षा' के सिद्धांत को पूरी तरह त्यागकर 'तुष्टीकरण की नीति' अपना ली।

- **म्यूनिख समझौता (Munich Agreement, 1938):** जब हिटलर ने चेकोस्लोवाकिया के सुडेटनलैंड (Sudetenland) पर दावा किया, तो ब्रिटेन और फ्रांस ने राष्ट्र संघ को दरकिनार करते हुए म्यूनिख में हिटलर से

समझौता कर लिया। **ओवरी (2010)** के अनुसार, यह राष्ट्र संघ की 'नैतिक मृत्यु' की घोषणा थी। संघ के एक सदस्य (चेकोस्लोवाकिया) की बलि अन्य सदस्यों द्वारा ही चढ़ा दी गई।

- **तानाशाहों का आत्मविश्वास:** मंचूरिया और अबीसीनिया में संघ की नपुंसकता ने हिटलर को यह विश्वास दिलाया कि अंतरराष्ट्रीय कानून केवल कागजों तक सीमित हैं। **हेनिग (1995)** तर्क देते हैं कि यदि 1936 में राइनलैंड के समय संघ ने कठोरता दिखाई होती, तो हिटलर का पतन वहीं हो सकता था, लेकिन संघ की चुप्पी ने युद्ध को 'अपरिहार्य' बना दिया।

शक्ति संतुलन का विखंडन (Collapse of the Balance of Power): राष्ट्र संघ की स्थापना का उद्देश्य 'शक्ति संतुलन' की पुरानी पद्धति को बदलकर 'विश्व समुदाय' की भावना जगाना था। लेकिन 1938 तक आते-आते विश्व पुनः दो गुटों में बंट गया।

- **रोम-बर्लिन-टोक्यो धुरी:** संघ की विफलता ने इटली, जर्मनी और जापान को एक साथ ला खड़ा किया। **मॉर्गनथाऊ (1948)** के अनुसार, जब अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं राष्ट्रीय हितों को संतुलित करने में विफल रहती हैं, तो सैन्य गठबंधन और युद्ध ही एकमात्र विकल्प बचते हैं।
- **सोवियत संघ का अविश्वास:** राष्ट्र संघ द्वारा सोवियत संघ की उपेक्षा और पश्चिमी शक्तियों के 'साम्यवाद-विरोध' ने स्टालिन को हिटलर के साथ 'नाजी-सोवियत अनाक्रमण समझौते' (1939) के लिए मजबूर किया। यह समझौता द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत की तात्कालिक गारंटी बन गया।

चार्ट 5: अपरिहार्यता के प्रमुख कारक (Factors Leading to Inevitability)

कारक (Factor)	राष्ट्र संघ की भूमिका	परिणाम (Outcome)
वसाय की संधि	संधि का रक्षक (Enforcer)	जर्मनी में प्रतिशोध और नाजीवाद का उदय।
आर्थिक मंदी	समन्वय का अभाव	राष्ट्रों का 'आर्थिक राष्ट्रवाद' की ओर झुकाव।
सामूहिक सुरक्षा	केवल सैद्धांतिक अस्तित्व	छोटे राष्ट्रों का बड़ी शक्तियों से विश्वास उठना।
निरस्त्रीकरण	पूर्ण विफलता	यूरोप में हथियारों की अभूतपूर्व होड़।

क्या युद्ध टाला जा सकता था? (An Alternative View): यद्यपि यह शोध 'अपरिहार्यता' पर केंद्रित है, लेकिन **कैर (1939)** जैसे यथार्थवादी इतिहासकारों का मानना है कि युद्ध को टाला जा सकता था यदि:

1. **संयुक्त राज्य अमेरिका** प्रारंभ से ही राष्ट्र संघ का नेतृत्व करता।
2. **आर्थिक प्रतिबंधों** को राजनीति से ऊपर उठकर (विशेषकर तेल प्रतिबंध) लागू किया जाता।
3. **फ्रांस और ब्रिटेन** अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों को त्यागकर 'सामूहिक सुरक्षा' के लिए सैन्य प्रतिबद्धता दिखाते।

लेकिन 1939 की गर्मियों तक, कूटनीति के सभी रास्ते बंद हो चुके थे। 1 सितंबर, 1939 को पोलैंड पर जर्मनी का आक्रमण उस 'अपरिहार्यता' का अंतिम परिणाम था, जिसकी नींव राष्ट्र संघ की पहली संरचनात्मक गलती के साथ ही रख दी गई थी (Northedge, 2004)।

आलोचनात्मक मूल्यांकन: राष्ट्र संघ का इतिहास केवल एक अंतरराष्ट्रीय संगठन की विफलता की कहानी नहीं है, बल्कि यह मानव सभ्यता के उस पहले संगठित प्रयास की हार है जो युद्ध को 'अवैध' घोषित करना चाहता था। जैसा कि **कैर (1939)** ने अपनी प्रसिद्ध कृति में तर्क दिया है, राष्ट्र संघ की सबसे बड़ी विफलता उसके 'यूटोपियाई आदर्शवाद' (Utopian Idealism) और कठोर 'यथार्थवाद' (Realism) के बीच के संघर्ष में निहित थी।

आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद का द्वंद्व: राष्ट्र संघ की नींव विल्सन के इस विश्वास पर टिकी थी कि राष्ट्र नैतिक रूप से

व्यवहार करेंगे। हालांकि, अंतरराष्ट्रीय राजनीति का यथार्थ इससे कोसों दूर था।

- **सामूहिक सुरक्षा का भ्रम:** सामूहिक सुरक्षा का सिद्धांत इस धारणा पर आधारित था कि सभी राष्ट्र शांति को अपने व्यक्तिगत लाभ से ऊपर रखेंगे। **मॉर्गनथाऊ (1948)** के अनुसार, यह सिद्धांत इसलिए विफल रहा क्योंकि राष्ट्रों ने अपनी सुरक्षा को 'अविभाज्य' (Indivisible) नहीं माना। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन के लिए मंचूरिया की रक्षा करना उसके राष्ट्रीय हित में नहीं था, इसलिए उसने सिद्धांत की बलि दे दी।
- **नैतिकता बनाम शक्ति:** संघ के पास केवल 'नैतिक प्रभाव' (Moral Persuasion) था। **जिम्मर्न (1936)** का तर्क है कि कानून बिना प्रवर्तन शक्ति (Enforcement Power) के केवल एक सुझाव मात्र होता है। संघ के पास कानून तो थे, लेकिन उन्हें लागू करने के लिए 'पुलिस' नहीं थी।

शक्तियों का ध्रुवीकरण और संघ का 'पश्चिमी चेहरा' : आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो राष्ट्र संघ कभी भी वास्तव में 'विश्व संघ' नहीं बन पाया।

- **विजेताओं का उपकरण:** जर्मनी और सोवियत संघ जैसे देशों की नजर में यह संगठन केवल वर्साय की संधि के लाभार्थियों (ब्रिटेन और फ्रांस) के हितों की रक्षा करने वाला एक क्लब था। **स्कॉट (1973)** के अनुसार, जब तक कोई संगठन समावेशी (Inclusive) नहीं होता, वह वैश्विक वैधता प्राप्त नहीं कर सकता।
- **यूरोपीय केंद्रीयता:** संघ का अधिकांश ध्यान यूरोप की सीमाओं पर केंद्रित रहा। इसने अफ्रीका और एशिया के उपनिवेशों की आकांक्षाओं की अनदेखी की। 'मैंडेट प्रणाली' (Mandate System) वास्तव में साम्राज्यवाद का ही एक सुसंस्कृत रूप था, जिसने गैर-यूरोपीय राष्ट्रों के मन में संघ के प्रति अविश्वास पैदा किया।

आर्थिक मंदी और 'राष्ट्रवाद' का पुनरुत्थान : 1929 की महान आर्थिक मंदी ने राष्ट्र संघ की ताबूत में आखिरी कील ठोक दी।

- **आर्थिक सहयोग का अभाव:** जब आर्थिक संकट आया, तो राष्ट्रों ने अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बजाय 'संरक्षणवाद' (Protectionism) अपनाया। **ओवरी (2010)** के अनुसार, आर्थिक असुरक्षा ने ही हिटलर और मुसोलिनी जैसे तानाशाहों को जन्म दिया। संघ के पास आर्थिक संकट से निपटने के लिए कोई प्रभावी वित्तीय ढांचा नहीं था।
- **अधिनायकवाद के समक्ष समर्पण:** आर्थिक रूप से कमजोर ब्रिटेन और फ्रांस युद्ध का जोखिम नहीं उठा सकते थे, जिसने उन्हें 'तुष्टीकरण' की आत्मघाती राह पर धकेला।

चार्ट 6: राष्ट्र संघ की विफलता का बहुआयामी विश्लेषण

विश्लेषण का आयाम	मुख्य आलोचना	प्रभाव (Impact)
संवैधानिक	सर्वसम्मति का नियम और वीटो की शक्ति।	त्वरित निर्णय लेने में अक्षमता।
सैन्य	सदस्य राष्ट्रों की सेना पर निर्भरता।	आक्रमणकारियों के मन में संघ का कोई डर नहीं रहा।
राजनीतिक	प्रमुख शक्तियों (USA) की अनुपस्थिति।	वैश्विक प्रतिबंधों का निष्प्रभावी होना।
नैतिक	वर्साय की संधि का पक्षपातपूर्ण क्रियान्वयन।	पराजित राष्ट्रों में प्रतिशोध की भावना।

एक 'सफल विफलता'? (The Paradox of Failure) : यद्यपि राजनीतिक रूप से संघ विफल रहा, लेकिन एक आलोचनात्मक मूल्यांकन इसके मानवीय पक्षों की अनदेखी नहीं कर सकता। **वाल्टर्स (1952)** तर्क देते हैं कि संघ ने सामाजिक और मानवीय क्षेत्रों में अभूतपूर्व कार्य किए:

- इसने अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के माध्यम से श्रमिकों के अधिकारों को वैश्विक पहचान दी।
- शरणार्थी संकट और दास प्रथा के उन्मूलन में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही।
- **संयुक्त राष्ट्र के लिए आधार:** सबसे बड़ी सफलता यह थी कि इसने दुनिया को सिखाया कि एक अंतरराष्ट्रीय संगठन में क्या नहीं होना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र (UN) में सुरक्षा परिषद का गठन और वीटो की सीमित शक्ति राष्ट्र संघ की इन्हीं विफलताओं का प्रत्यक्ष परिणाम है (Northedge, 2004)।

आलोचनात्मक रूप से, राष्ट्र संघ एक ऐसी 'अधूरी इमारत' थी जिसे शांति की नींव पर तो बनाया गया था, लेकिन उसे सुरक्षा की दीवारों और शक्ति की छत से वंचित रखा गया। इसकी विफलता अपरिहार्य थी क्योंकि इसने राष्ट्रों की 'स्वार्थ-नीति' को बदलने की कोशिश तो की, लेकिन उनके पास शक्ति के संतुलन का कोई विकल्प नहीं दिया (Henig, 1995)।

निष्कर्ष : "राष्ट्र संघ की असफलता और द्वितीय विश्व युद्ध की अपरिहार्यता" का यह आलोचनात्मक विश्लेषण इस स्पष्ट तथ्य की ओर संकेत करता है कि राष्ट्र संघ (League of Nations) अपने समय के विचारों से बहुत आगे, लेकिन अपनी शक्तियों में बहुत पीछे था। जैसा कि **वाल्टर्स (1952)** ने रेखांकित किया है, संघ की विफलता केवल एक संस्था की हार नहीं थी, बल्कि यह उस युग की 'सामूहिक इच्छाशक्ति' की कमी का परिणाम थी।

प्रमुख निष्कर्ष :

1. **संरचनात्मक पंगुता:** शोध यह सिद्ध करता है कि संघ की नियमावली (Covenant) में अंतर्निहित दोष, जैसे 'सर्वसम्मति का नियम' और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसी महाशक्ति की अनुपस्थिति ने इसे प्रारंभ से ही कमजोर बनाए रखा। **नॉर्थेज (2004)** के अनुसार, बिना प्रवर्तन शक्ति के अंतरराष्ट्रीय शांति केवल एक 'सुखद कल्पना' बनकर रह गई।
2. **शक्ति राजनीति का प्रभाव:** मंचूरिया (1931) और अबीसीनिया (1935) के संकटों ने यह स्पष्ट कर दिया कि जब अंतरराष्ट्रीय सिद्धांतों और राष्ट्रीय हितों के बीच टकराव होता है, तो राष्ट्र हमेशा अपने स्वार्थ को चुनते हैं। **टेलर (1961)** का तर्क सही प्रतीत होता है कि बड़ी शक्तियों द्वारा अपनाई गई 'तुष्टीकरण की नीति' ने ही अधिनायकवादी शक्तियों को यह विश्वास दिलाया कि वे बिना किसी दंड के युद्ध की ओर बढ़ सकते हैं।
3. **अपरिहार्यता का तर्क:** विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि 1936 (राइनलैंड का पुनर्शास्त्रीकरण) के बाद द्वितीय विश्व युद्ध एक 'अटल सत्य' बन चुका था। राष्ट्र संघ की निष्क्रियता ने एक ऐसा कूटनीतिक शून्य पैदा किया, जिसे केवल शक्ति के बल पर ही भरा जा सकता था। **हेनिग (1995)** के अनुसार, संघ की कमजोरी ने न केवल युद्ध को संभव बनाया, बल्कि उसे अपरिहार्य (Inevitable) भी कर दिया।

ऐतिहासिक विरासत और सीख (Historical Legacy)

यद्यपि राष्ट्र संघ द्वितीय विश्व युद्ध को रोकने में विफल रहा, लेकिन इसकी 'शानदार विफलता' ने आधुनिक विश्व व्यवस्था की नींव रखी।

- **संयुक्त राष्ट्र (UN) का मार्गदर्शक:** 1945 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ ने राष्ट्र संघ की गलतियों से बहुत कुछ सीखा। सुरक्षा परिषद (Security Council) में 'वीटो पावर' का प्रावधान और संयुक्त राष्ट्र की अपनी शांति सेना का विचार राष्ट्र संघ की संरचनात्मक कमियों का ही सुधारात्मक उत्तर है (Northedge, 2004)।
- **मानवीय सफलता:** राजनीतिक विफलता के बावजूद, संघ ने शरणार्थी सहायता, अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य मानकों और श्रम अधिकारों के क्षेत्र में जो प्रतिमान स्थापित किए, वे आज भी 'संयुक्त राष्ट्र' की विशेष एजेंसियों के रूप में जीवित हैं।

अंततः, राष्ट्र संघ एक ऐसा 'प्रयोग' था जिसने दुनिया को यह सिखाया कि अंतरराष्ट्रीय शांति केवल कागजी संधियों से

नहीं, बल्कि सक्रिय सहयोग, न्यायपूर्ण व्यवस्था और सामूहिक सैन्य प्रतिबद्धता से ही संभव है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यदि राष्ट्र संघ ने अपनी संविदा की धाराओं को कड़ाई से लागू किया होता, तो शायद 1939 की विभीषिका से मानवता को बचाया जा सकता था। 1946 में राष्ट्र संघ के अंतिम सत्र में लॉर्ड रॉबर्ट सेसिल के शब्द आज भी प्रासंगिक हैं: "राष्ट्र संघ मर चुका है, संयुक्त राष्ट्र अमर रहे"।

संदर्भ सूची :

1. **Bennett, A. L., & Oliver, J. K. (2002).** *International Organizations: Principles and Issues* (7th ed.). Pearson College Div. (pp. 34–62).
2. **Burrows, R. (1949).** *The League of Nations: A Post-Mortem*. British Year Book of International Law, Vol. 21. (pp. 231–245).
3. **Carr, E. H. (1939).** *The Twenty Years' Crisis, 1919–1939: An Introduction to the Study of International Relations*. Macmillan. (pp. 102–148).
4. **Creswell, J. W. (2014).** *Research Design: Qualitative, Quantitative, and Mixed Methods Approaches* (4th ed.). SAGE Publications. (pp. 183–210).
5. **Hauslab, M. (2018).** *The Principle of Collective Security: A Historical Analysis*. Academic Press. (pp. 12–29).
6. **Henig, R. (1995).** *The League of Nations*. Haus Publishing / Routledge (Reprint 2010). (pp. 45–88).
7. **Morgenthau, H. J. (1948).** *Politics Among Nations: The Struggle for Power and Peace*. Alfred A. Knopf. (pp. 161–195).
8. **Northedge, F. S. (2004).** *The League of Nations: Its Life and Times, 1920-1946*. Holmes & Meier Publishers. (pp. 210–265).
9. **Overy, R. (2010).** *The Inter-War Crisis: 1919-1939* (2nd ed.). Longman / Routledge. (pp. 58–92).
10. **Scott, G. (1973).** *The Rise and Fall of the League of Nations*. Macmillan / Hutchinson. (pp. 115–150).
11. **Skocpol, T. (1984).** *Vision and Method in Historical Sociology*. Cambridge University Press. (pp. 1–21).
12. **Stone, J. (1954).** *Legal Controls of International Conflict*. Stevens & Sons. (pp. 165–182).
13. **Taylor, A. J. P. (1961).** *The Origins of the Second World War*. Hamish Hamilton / Penguin Books. (pp. 102–130).
14. **Walters, F. P. (1952).** *A History of the League of Nations*. Oxford University Press. (pp. 461–512, 630–655).
15. **Zimmern, A. (1936).** *The League of Nations and the Rule of Law, 1918-1935*. Macmillan. (pp. 280–315).

•